गायत्री एवं यज्ञ का वैज्ञानिक रहस्य

श्रीराम शर्मा आचार्य

गायत्री एवं यज्ञ का वैज्ञानिक रहस्य

लेखक :

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१०

मूल्य : ४.०० रुपये

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

लेखक :
श्रीराम शर्मा आचार्य

पुनरावृत्ति सन् २०१०

मुद्रक :
युग निर्माण योजना प्रेस,
गायत्री तपोभूमि, मथुरा

यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान

"देव संस्कृति-विश्वसंस्कृति का मूल बीज"—

"गायत्री और यज्ञ"—

गायत्री को भारतीय संस्कृति की जननी एवं यज्ञ को भारतीय धर्म का पिता कहा गया है। यह दोनों ज्ञान और विज्ञान के अंतरंग एवं बहिरंग जीवन के समुन्नायक केंद्र माने गए हैं। भारतीय तत्त्व दर्शन, आचारशास्त्र व दृष्टिकोण को समझने के लिए उपर्युक्त दोनों आधारों को गहराई तक समझना पड़ेगा।

किसी समय यह देश तैंतीस कोटि देवताओं का, दिव्य नागरिकों का देश था। यहाँ के निवासी जगद्गुरु-चक्रवर्ती, विज्ञानवेत्ता एवं विभूतियों के अधिपति के रूप में विश्व में हर क्षेत्र का नेतृत्व करते थे। सर्वतोमुखी प्रगति का आधार क्या है, इसे जानने के लिए विश्व के कोने-कोने में जिज्ञासु यहाँ आते थे। वे अपने को, अपने क्षेत्र को प्रकाशवान बनाने के लिए जिस ज्ञान को समेटकर ले जाते थे, उसका सार-तत्त्व यदि दो शब्दों में कहना हो तो गायत्री और यज्ञ को ही कहा जा सकता है। जिस प्रकार ईंट और चूने से दीवार बनी होती है, उसी प्रकार भारतीय गरिमा के संबल यह गायत्री और यज्ञ ही हैं। इन दो सूत्रों की व्याख्या के लिए ही भारतीय अध्यात्म, दर्शन, ज्ञान, विज्ञान, का विशालकाय कलेवर खड़ा किया गया है।

मोटी दृष्टि से देखने में गायत्री मंत्र चौबीस अक्षरों का संस्कृत भाषा में विनिर्मित छोटा सा पद्य भर है जिसे उपासना के समय जपा जाता है। मोटी दृष्टि से यज्ञ सुगंधित वस्तुओं को अग्नि में यजन करके वायुमंडल में सुगंधि फैलाने का एक छोटा सा कर्मकांड मात्र प्रतीत होता है। यह इस रत्न-हार को रखने के लिए काम आने वाले डिब्बे का परिचय मात्र है। बहुमूल्य वस्तु इस आवरण के भीतर रहती है। चर्म-चक्षु उस डिब्बे के खोल को ही पूरी वस्तु मान लेते हैं और उसी की कीमत नगण्य जितनी आँकते हैं। यदि उन्हें वह आवरण खोलकर भीतर रखे बहुमूल्य आभूषणों को देखने का अवसर मिला होता तो

प्रतीत होता कि जितना समझा गया था, उसकी तुलना में वास्तविकता असंख्य गुनी महत्त्वपूर्ण है। गायत्री को जप-भजन का माध्यम माना अवश्य गया है, पर वह उतने तक ही सीमित नहीं है। यज्ञ से वायु शुद्धि भी होती है, पर उसे इतने छोटे दायरे तक सीमित कर देना यथार्थता के साथ अन्याय करना होगा। इन दोनों की महिमा असाधारण है। गायत्री का तत्त्वज्ञान समुद्र से अधिक गहरा है और यज्ञ का विस्तार-क्षेत्र भूतल पर अवस्थित पर्वतों से अधिक ऊँचा है। यही कारण है कि इन दोनों को भारतीय उपासना विज्ञान का—तत्त्वदर्शन का—आचारशास्त्र का अविच्छिन्न अंग माना गया। प्रत्येक धार्मिक क्रियाकृत्य के साथ इन्हें जोड़कर रखा गया है। ताकि कहीं मनुष्य में देवत्व का उदय कर सकने वाले—धरती पर स्वर्ग का वातावरण बना सकने वाले इन महान सूत्रों का कभी कोई विस्मरण न कर सकें।

भारतीय धर्म, अध्यात्म एवं व्यवहार का मार्गदर्शन तत्त्वज्ञान ही वेद है, वेदों में ज्ञान भी भरा पड़ा है—विज्ञान भी। उसमें आत्मिक प्रगति और भौतिक उन्नति का समान पथ प्रदर्शन है।

'वेद' किसी धर्म, संप्रदाय, जाति या देश के लिए नहीं वरन समस्त मानव जाति की सार्वभौम संपदा है। चूँकि यह अति प्राचीन है। विश्वसभ्यता का उदय यही से हुआ इसलिए इस भूमि पर उदय हुए दिव्य आलोक को भारतीय धर्म का नाम दे दिया गया। ऐवरेस्ट नामक व्यक्ति ने संसार की सबसे ऊँची गौरीशंकर चोटी का पता लगाया, इसलिए उस चोटी का नाम 'ऐवरेस्ट' रख दिया गया। ठीक इसी प्रकार विश्वसंस्कृति और विश्वधर्म का उदय भारत में होने के कारण उनके साथ 'भारत' शब्द अनायास ही जुड़ गया। आवश्यकता समझी जाए तो इस नामकरण से 'भारत, शब्द हटाकर 'विश्व' शब्द भी जोड़ा जा सकता है। वस्तुतः भारतीय संस्कृति को—उसकी प्रतीक गायत्री को विश्वसंस्कृति ही समझा जाना चाहिए और भारतीय धर्म के उसके प्रतीक 'यज्ञ' को विश्वधर्म ही माना जाना चाहिए।

पुराणों में कथा आती है कि सृष्टि के आरंभ में ब्रह्मा जी ने गायत्री मंत्र के आधार पर सौ वर्ष पर्यंत ध्यान-तप किया। यह मंत्र ज्ञान विभूति के रूप में उन्हें उपलब्ध हुआ। ज्ञान का ही दूसरा नाम वेद है। उपलब्ध दिव्य ज्ञान को उन्होंने सर्वसाधारण की सुविधा के लिए चार

भागों में विभक्त करके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के साधन रूप चार वेदों के रूप में विनिर्मित कर दिया। इस प्रकार गायत्री वेद जननी हुई। सृष्टि का दृश्य रूप प्रस्तुत करने के लिए पदार्थ की साधना की आवश्यकता पड़ी। ब्रह्मा जी ने दूसरी बार फिर तप किया। यह 'यज्ञ' रूप था। इससे विज्ञान से संबंधित उपकरणों की उपलब्धि हुई। इस विभूति को सावित्री कहते हैं। पौराणिक उपाख्यान के आधार पर ब्रह्माजी की दो पत्नियाँ हैं। परमेश्वर की दो उत्क्रांतियाँ हैं—एक गायत्री दूसरी सावित्री। एक ज्ञान विभूति दूसरी विज्ञान संपदा। वेदों में इन्हीं दोनों का विवेचन, निरूपण और उपलब्धि साधन का विस्तृत वर्णन है। एक ही ज्ञानधारा के दो प्रयोग हैं। गायत्री का तत्त्वदर्शन ही व्यवहार- प्रकरण में पल्लवित होकर यज्ञ बना है। उपर्युक्त पौराणिक अलंकार में मनीषियों ने मानवी गरिमा और प्रगति के सारतत्त्व की ओर अंगुलि निर्देश किया है।

वेद के गूढ़ रहस्यों को सर्वसाधारण को अधिक सुविधा और सरलता के साथ समझने के लिए पीछे अनेक धर्मशास्त्र बने। ब्राह्मण, आरण्यक, सूत्र, उपनिषदें, स्मृतियाँ, पुराण आदि वेदतत्त्व का ही विवेचन है। रामायण, गीता, भागवत आदि प्रचलित धर्मशास्त्रों को वेद का सरल विवेचन ही कहा जा सकता है। गायत्री को बीजमंत्र कहा गया है। उसी की व्याख्या स्वरूप धर्मशास्त्रों का विशालकाय वटवृक्ष अगणित प्रशाखाओं पत्र, पुष्पों के रूप में लदा खड़ा है।

जीवनयापन की भारतीय पद्धति को 'यज्ञ' कहा जा सकता है। आचार, व्यवहार, उपार्जन, उपयोग के समस्त क्रिया-कलाप सूत्र रूप में समझना हो तो 'यज्ञ' तत्त्व की गहराई में उतरना होगा। और भी आगे चलें तो भौतिक विज्ञान का अंतराल यज्ञ रूप में समझना होगा। यंत्रों द्वारा उत्पादित शक्ति मनुष्य की शारीरिक सामर्थ्य को कई गुना अधिक बढ़ा देती है। जितना कार्य शरीर कर सकता है उससे कहीं ज्यादा काम, अपेक्षाकृत कम समय में यंत्र कर देता है। इसी प्रकार मंत्रों में वह सामर्थ्य रहती है जो मानवी चेतना की—मानसिक शक्ति को अनेक गुना बढ़ा दे और वे कार्य सरल कर दें जो सामान्य मनोबल द्वारा बहुत श्रम एवं बहुत समय में ही सफल होने संभव हैं। कहना न होगा कि मंत्रों को सजग एवं समर्थ बनाने की शक्ति यज्ञ-प्रक्रिया में सन्निहित रहती है। मशीनों के लिए जिस प्रकार तेल, कोयला, बिजली, भाप आदि ईंधनों

की आवश्यकता पड़ती है उसी प्रकार मंत्रों का जप-पाठ ही नहीं सूक्ष्मशक्ति के उत्पादन, अभिवर्द्धन में यज्ञ-प्रक्रिया का प्रयोग भी अभीष्ट होता है। यज्ञ अपने आप में एक सर्वांगपूर्ण विज्ञान है। इसमें भौतिक और आत्मिक सफलताओं का प्रचुर पथ प्रशस्त करने की दिव्य क्षमता भरी पड़ी है। भारतीय तत्त्ववेत्ता यज्ञ विज्ञान का प्रयोग आदिकाल से ही करते चले आ रहे हैं।

वेद, ज्ञान और विज्ञान के भंडार हैं। प्रत्येक ऋचा दो सामर्थ्यों से भरी-पूरी है। वेद मंत्रों का एक पथ है ज्ञान, दूसरा है विज्ञान। ज्ञान द्वारा नीति, धर्म, अध्यात्म, चिंतन की उत्कृष्टता उपलब्ध की जाती है और विज्ञान द्वारा उस शक्ति का उपार्जन होता है जिससे सर्वतोमुखी प्रगति का पथ प्रशस्त किया जा सके। आज भौतिक विज्ञान के अनेक आधार और उपकरण हैं, पर किसी समय केवल मानव शरीर और मस्तिष्क में—स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर में ओत-प्रोत दिव्य ऊर्जा का उपयोग ही उन समस्त प्रयोजनों को पूरा कर देता था जिन्हें आज अद्भुत यंत्र-उपकरण भी पूरा नहीं कर पाते। भारतीय विज्ञान का आधार था—आत्मिक और भौतिक ऊर्जाओं का समन्वय करके एक नई प्रचंड सामर्थ्य को उत्पन्न करना और उससे अभीष्ट उपलब्धियों को प्राप्त करना।

वेद मंत्रों में उच्चस्तरीय ज्ञान ज्योति का आलोक सर्वविदित है। उनका विज्ञानपरक प्रयोग योग—साधना, तपश्चर्या से संबंधित है। इस संदर्भ में यज्ञ विद्या का उपयोग भी जुड़ा हुआ है। बौद्धिक कर्मकांडों में यज्ञीय-प्रक्रिया अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है। ऋषियों के आश्रमों में अखंड अग्नियाँ रहती थीं और धार्मिक नित्यकर्म में यज्ञ का अनिवार्य स्थान था। आत्मबल उपार्जन का साधनात्मक प्रयोग करने वाले साधक, पंच अग्नियाँ, तीन अग्नियाँ घरों में स्थापित करते थे और सपत्नीक उनमें नित्य यजन करते थे। मंत्रों का पाठ, विवेचन, जप, अनुष्ठान ज्ञानपक्ष पूरा करते हैं और अग्निहोत्र स्वाहाकार से उनकी भौतिक शक्ति का विस्तार होता है। दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि हम अतीत की, उन महान परंपराओं को गँवा बैठे, जिनके आधार पर कि यह देश किसी समय '**स्वर्गादपि गरीयसी**' परिस्थितियों में था। कहना न होगा कि गौरवशाली उत्कर्ष में सर्वतोमुखी आत्मशक्ति ही झिलमिलाती थी,

और उसे उपलब्ध करने में मंत्रों का ज्ञान-विज्ञानपरक चिंतन एवं साधन समन्वित पद्धति का पूरी तरह समावेश था। जप-ध्यान से लेकर अग्निहोत्र तक की प्रक्रिया इसी साधन क्षेत्र में आती है।

यज्ञ को सर्वसाधारण के दैनिक एवं सामयिक धर्मकृत्यों में अनिवार्य रूप से जोड़ते हुए भारतीय संस्कृति का ढाँचा खड़ा किया गया है। संध्या का एक अंग ही अग्निहोत्र है। धर्मशास्त्रों का निर्देश नित्य उपासना का संध्या विधान पूरा करने के साथ-साथ अग्निहोत्र करने का भी है। अमावस्या व पूर्णिमा को हर पंद्रहवें दिन द्वादश, पौर्णमास्य यज्ञ करने का विधान है। जन्म से लेकर मृत्युपर्यंत समय पर हर व्यक्ति के जीवन में संपन्न किए जाते रहने वाले सोलह संस्कारों में हवन अनिवार्य है। प्रत्येक पर्व-त्योहार मनाने में यज्ञ आयोजन आवश्यक है। होली तो अधिक समारोहपूर्वक मनाया जाने वाला वार्षिक यज्ञ ही है। यज्ञीय भावना का व्यावहारिक स्वरूप है। व्यवहार में आदर्शवादिता, विचारों में उत्कृष्टता, लक्ष्य की महानता दिव्य मनःस्थिति, समाजपरायण रीति-नीति। इस भाव चेतना को जाग्रत एवं प्रखर बनाए रखने के लिए, वैज्ञानिक उपचार है। यज्ञ ब्राह्मणत्व की उपलब्धि के लिए मनु आदि शास्त्रकारों ने कहा है— **महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मणीयं क्रियते तनुः**। अर्थात यज्ञ और महायज्ञों की सहायता से शरीरों को ब्राह्मण बनाया जाता है।

यज्ञों का भौतिक सुविधा-संवर्द्धन के लिए भी उपयोग है। वायुमंडल में प्राणप्रद तत्त्वों का अभिवर्द्धन, आरोग्य-वृद्धि एवं रोग कृमियों से निवृत्ति, मनोविकारों का समाधान, जीवन संपदा से भरी-पूरी वर्षा, सुसंतति की प्राप्ति, मनस्विता एवं तेजस्विता की उपलब्धि, विपत्तियों का निवारण, सौभाग्य संवर्द्धन जैसे कितने ही भौतिक लाभ ऐसे हैं, जिन्हें प्राप्त कराने में यज्ञ उपचार परोक्ष रूप में निश्चयपूर्वक सहायक होता है। आत्मिक और भौतिक, लौकिक और पारलौकिक, अंतरंग और बहिरंग जीवन में सुख-शांति की अभिवृद्धि के लिए यज्ञीय प्रक्रिया की सुनिश्चित उपयोगिता देखते हुए ही भारतीय धर्म ने उसे सर्वोपरि महत्त्वपूर्ण धर्मकृत्य माना है। प्रथम वेद ऋग्वेद का प्रथम मंत्र—"**अग्नि मीले पुरोहितं**" .... यज्ञ की महत्ता, गरिमा, आवश्यकता और उपयोगिता बताने के लिए ही अवतरित हुआ है। भारतीय धर्मानुयायी को जीवन यज्ञ की साधना के लिए जीना पड़ता है।

'उसे धर्मसूत्र यज्ञोपवीत'—यज्ञीय पवित्रता को जीवन का अविच्छिन्न अंग बनाकर व्रत-बंध ग्रहण करना पड़ता है। उसके शरीर की अंत्येष्टि यज्ञ पिता की गोदी में होती है। हिंदुओं का मृतक संस्कार जिस चिता में जलाया जाता है, वह स्थूल रूप में यज्ञ 'विधा' ही है।

यज्ञ का अर्थ है—संयम, सेवा, पवित्रता, परमार्थरायणता, सामूहिकता। यह एक दर्शन, दृष्टिकोण एवं जीवनयापन का तरीका है। अग्निहोत्र को एक प्रकार का पूर्वाभ्यास-रिहर्सल कह सकते हैं। उस कर्मकांड के माध्यम से यह तथ्य हृदयंगम करने में सुविधा होती है कि हमारा चिंतन, कर्तृत्व और लक्ष्य क्या हो?

अग्निहोत्र में अपनी मूल्यवान, आवश्यक, प्रिय एवं उपयोगी वस्तुएँ यजन की जाती हैं, ताकि वे वायुभूत होकर समस्त विश्व में वितरित हो सकें और व्यक्ति के उपार्जन-अनुदान का लाभ सारा समाज उठा सके। यह सब श्रद्धा, सद्भावना,स्वेच्छा और प्रसन्नतापूर्वक किया जा रहा है। इसका प्रकटीकरण मंत्रोच्चार के साथ 'स्वाहाकार' के साथ किया जाता है और विश्वास किया जाता है कि मंत्र रूप सद्विचार और यजन रूप सत्य जो अपने द्वारा किया जा रहा है, उसका लक्ष्य समस्त समाज को सुखी समुन्नत बनाना है। अपना समय, श्रम एवं धन इस कार्य में लग रहा है, उसकी क्षति वस्तुतः एक बीजारोपण है जिसका लाभ लोकमंगल के रूप में समस्त विश्व को मिलेगा। यही है यज्ञीय तत्त्वदर्शन जिसे अग्निहोत्र के रूप में प्रतीक मानकर चलते हैं और इच्छा, विचारणा, क्रिया एवं संपदा का उपयोग इसी आधार पर किया जाना चाहिए। उत्पादन में पवित्रता और वितरण में समता का दृष्टिकोण रखकर हमारा समस्त क्रिया-कलाप गतिशील होना चाहिए। यदि यह लक्ष्य निर्धारित रहे तो व्यक्ति का स्वरूप देवोपम और समाज में स्वर्गीय सतयुगी वातावरण बनने में तनिक भी संदेह न रहे। यज्ञ का कर्मकांड और तत्त्वदर्शन इसी प्रेरणा से ओत-प्रोत हैं।

जो कुछ मिले उसे स्थूल से सूक्ष्म बनाकर व्यापक बना देना अग्नि का धर्म है। यह प्रक्रिया हमारे जीवन में भी चलनी चाहिए। अग्नि को कितना ही अधिक क्यों न दें, वह उसमें से अपने पास तनिक भी नहीं रखता, सब कुछ वितरण ही करता रहता है। अग्नि हमें याद दिलाती रहती है कि अंत में केवल भस्मावशेष ही रह जाने वाला है। उसे मस्तक

पर लगाया जाए। यज्ञ भस्म को मस्तक पर लगाने का कृत्य इसी स्मरण के लिए है कि हम मृत्यु को भूल न जाएँ, भौतिक उपलब्धियों पर अहंकार न करें। क्षणिक लिप्साओं के लिए अनर्थ न करें। यह याद रखें कि बालू रेत से बना यह किला जादुई महल की तरह आज नहीं तो कल तिरोहित हो जाने वाला है। इसका सदुपयोग कर लेना ही दूरदर्शिता है। ऐसी ही अनेकों शिक्षाएँ, प्रेरणाएँ अग्निदेव द्वारा निरंतर प्राप्त होती हैं।

यज्ञ एक प्रकार से अग्निपूजा भी है। अग्नि की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं। उसे कितना ही दबाया-झुकाया जाए उसकी लौ सदा ऊपर की ओर उठने का प्रयत्न कर रही होगी। मानव जीवन के लिए उसकी शिक्षा है कि लोभ के आकर्षण और भय की विभीषिका सामने रहते हुए भी आदर्शों से नीचे न गिरा जाए, अपना चिंतन और कर्तृत्व ऊँचा ही रखा जाए। अग्नि के समान उष्णतायुक्त क्रिया-कलाप अपनाया जाए। सदा कर्मठ, तत्पर, उत्साही, साहसी और निर्भीक रहा जाए।

अग्नि में कुछ भी डाला जाए, वह अग्नि रूप ही हो जाता है। हमारे संपर्क में जो भी आवें उन्हें आत्मसात करें—अपनी श्रेष्ठता से उन्हें भी सुसज्जित करें। समीपवर्तियों को दृढ़ता एवं तेजस्विता वितरित करें—वातावरण को ज्योतिर्मय बनावें। यज्ञ के याजकों को अग्नि की यह विशेषताएँ भी अपने आचरण में उतारनी चाहिए।

"गायत्री महामंत्र का जप स्वयमेव यज्ञ ही है"—

गायत्री महाविद्या को ऋतंभरा प्रज्ञा का नीर-क्षीर विवेककर्त्री, विवेक बुद्धि का प्रतीक माना गया है। इसे दृष्टिकोण की परिष्कृत स्थिति एवं आत्माओं की—आकांक्षाओं की उत्कृष्टता भी कह सकते हैं। इस महामंत्र के २४ अक्षरों में सूत्र रूप से मन:शास्त्र, नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र का श्रेष्ठतम सारतत्त्व सन्निहित है। त्रिपदा गायत्री के तीन चरणों की उपनिषदीय व्याख्या '**असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माअमृतं गमय**', के रूप में प्रस्तुत हुई है। असत् की ओर नहीं सत् की ओर—अंधकार की ओर नहीं प्रकाश की ओर—मृत्यु की ओर नहीं अमृत की ओर चलने का निर्देश-संदेश गायत्री रूपी दिव्य वीणा के तारों से झंकृत हो रहा है। नैतिकता, मानवता, विवेकशीलता, उदारता, संयमनिष्ठा, एकता, कर्त्तव्यपरायणता, समता, शुचिता, ममता की रागिनियाँ इस महामंत्र की स्वरलहरी में

निरंतर झंकृत होती हैं। जो इस मानसरोवर में प्रवेश कर सका, वह हंस की तरह दिव्य होकर ही रहा है।

ॐ भूर्भुवः स्वः—गायत्री महामंत्र का शब्दार्थ अति सरल है, साथ ही अति सारगर्भित भी। भूः भुवः स्वः तीनों लोकों में अपने भीतर, बाहर और दिग्-दिगंत में 'ॐ' (परमेश्वर) समाया हुआ है। इस विश्व-ब्रह्मांड में सर्वत्र प्रभु की ज्योति जगमगा रही है। वह सबमें समाया हुआ है। यह आस्था गायत्री के शीर्ष (ॐ भूर्भुवः स्वः) से व्यक्त होती है। इस विश्व को परमेश्वर का विराट रूप माना जाए, उसे सुंदर, समुन्नत, सुव्यवस्थित बनाने के लिए सद्भावनाओं और सत्प्रवृत्तियों के साथ तत्पर रहा जाए। सर्वत्र परमेश्वर को विद्यमान मानकर उनके न्यायदंड से डरा जाए और अपना अंतरंग-बहिरंग जीवन उस स्तर का रखा जाए जैसा ईश्वर के राजकुमार किसी महामानव का होना चाहिए। यह है सार शिक्षा शीर्ष भाग की—

तत् प्रथम चरण की शिक्षा भी ध्यान देने योग्य है। 'तत्' (वह) ध्यान में रखा जाए। हर किसी की दृष्टि में आज के प्रत्यक्ष, तात्कालिक लाभ ही सब कुछ बने हुए हैं। 'वह' सबने भुला दिया है। भविष्य की—परोक्ष की—सूक्ष्म की ओर किसी का ध्यान नहीं। बहिरंग की रंगरेलियों में मस्त और व्यस्त अंतरंग की—आत्मा की—परलोक की—ईश्वर की बात कोई सोचता ही नहीं और सुर दुर्लभ मानव जीवन की सार्थकता की बात एक प्रकार से विस्मृति के गर्त में ही धकेल चुका है। यह भूल समय रहते सुधारी जानी चाहिए। समझा जाना चाहिए कि 'यह' ही सब कुछ नहीं है। दिव्य चेतना की पुकार है कि 'वह' अधिक मूल्यवान है जो चर्मचक्षुओं से तो नहीं दीखता पर विवेक की बुद्धि बताती है कि भविष्य को, अंतरंग को उज्ज्वल बनाना कम महत्त्व का नहीं है। यदि उसकी उपेक्षा की गई तो अनंतकाल तक पश्चात्ताप करना ही शेष रह जाएगा।

ईश्वर के चार नाम ऐसे हैं जिनमें सन्निहित गुणों को, संकेतों को अपनाए बिना तमसाच्छन्न जीवन में ज्योतिर्मय आलोक की झाँकी हो ही नहीं सकती। सवितुः (प्रकाशमान), वरेण्यं (वरण करने योग्य), भर्गः (भून डालने वाला तेजस्), देवस्य (दिव्य-देव संज्ञक)—यह चार ईश्वरीय गुण ऐसे हैं जिन्हें यदि चिंतन और कर्तृत्व में समाविष्ट कर लिया जाए तो नर में नारायण की, पुरुष में पुरुषोत्तम की, आत्मा में परमात्मा की दिव्य ज्योति प्रदीप्त हो सकती है।

सवितुः—हम दीप की तरह स्वयं जलकर दूसरों के लिए प्रकाशवान बनें। अपना जीवनक्रम आदर्श और अनुकरणीय बनाएँ। ज्ञान और विवेक से अंत:करण प्रकाशवान रखें। सविता, देवता, सूर्य के समान निरंतर कर्त्तव्यनिष्ठ रहें यह प्रेरणा है—'सवितु:' शब्द की।

वरेण्य—समूह में से श्रेष्ठतम का चयन। हंस की तरह नीर-क्षीर विवेक, मोती ही चरने की नीति। परंपराओं के घटाटोप में से केवल औचित्य की ही स्वीकृति। जनसंकुल द्वारा अपनाए जाने वाले उद्धत क्रिया-कलाप से अप्रभावित रहकर केवल उत्कृष्ट को ही अपनाने का साहस। गायत्री का 'वरेण्य' शब्द इन्हीं प्रेरणाओं से भरा-पूरा है।

भर्ग—भूनना। अनौचित्य को, अवांछनीयता को, अनाचार को, अविवेक को, अन्याय को नष्ट करने की प्रवृत्ति का संवर्द्धन। परमेश्वर का हर अवतार अधर्म के विनाश एवं धर्म की स्थापना के लिए हुआ। हर एक ने साधुता के परित्राण और दुष्कृतों के विनाश के लिए प्रचंड संघर्ष किया और धर्म युद्ध छेड़ा है। हर ईश्वरीय ज्योति के—आलोकित आत्मा के अवतरण का यही प्रयोजन हो सकता है। अपने व्यक्तिगत दोष-दुर्गुणों का—पारिवारिक अस्त-व्यस्तताओं का—सामाजिक अवांछनीयता का निराकरण किया ही जाना चाहिए और उसके लिए जोखिम उठाना हो तो वह भी उठाया ही जाना चाहिए। असहयोग, विरोध, संघर्ष में से परिस्थिति के अनुसार जो भी कदम उठाया जा सके अनीति उन्मूलन के लिए उठाया ही जाना चाहिए।

देवस्य—दिव्यता का जीवनक्रम में समावेश। पवित्र, निर्मल, उदार, संयमी, स्नेहसिक्त अंत:करण वाली आत्माएँ देव कहलाती हैं। 'भूसुर' पृथ्वी के देवता ऐसे ही महामानव कहलाते हैं, जिनमें निरंतर देने की, सेवा की, परोपकार की, प्रेमभरी सद्भावना सुरसरि की तरह उमड़ती रहती है। उन्हें देने में रस आता है, वे अपने ज्ञान का, व्यक्तित्व का, श्रम का, समय का, धन का उपयोग इस वसुधा को सुखी और समुन्नत बनाने में ही करते रहते हैं। लेने में निवृत्ति और देने में प्रवृत्ति यही है महामना का सार। यही है—मनुष्य की देवत्व में परिणति। गायत्री मंत्र के प्रथम चरण में इन्हीं चार महान सूत्रों को अपनाने का संकेत है। ईश्वर के मानवोपयोगी श्रेष्ठतम चार गुणों से परमेश्वर को

संबोधन किया गया है। सवितुः, वरेण्यं, भर्ग, देवस्य—यह चार शब्द मात्र ईश्वर के उत्तम नाम ही नहीं है वरन वे निर्देश भी हैं जो सच्चे ईश्वरभक्तों द्वारा अपनाए ही जाने चाहिए।

धीमहि—धारण करें। इस कान से सुनें उस कान निकालें, जानकारी भर बढ़ावें, वाक्‌विलास और मनोविनोद के लिए—परोपदेश के लिए यदि धर्मचर्चा का ऊहापोह होता रहे तो उतने भर से किसी का कुछ बनने वाला नहीं है, धर्म और अध्यात्म का सृजन इसलिए हुआ है कि उन्हें हृदयंगम किया जाए, आस्था में उतारा जाए और व्यावहारिक जीवन में कार्यान्वित किया जाए। गायत्री मंत्र का 'धीमहि' शब्द आदर्शवाद के सिद्धांतों को अंतराल के गहन मर्मस्थल में इस प्रकार प्रतिष्ठापित करने का निर्देश देता है कि वे निरंतर कार्यरूप में परिणत होते रहें।

धियो यो नः प्रचोदयात्—गायत्री मंत्र के अंतिम चरण में अपनी निज की ही नहीं, समस्त समाज की यथार्थ प्रगति की कामना की गई है और परमसत्ता से प्रार्थना की गई है कि सर्वतोमुखी प्रगति की आधारशिला सद्‌बुद्धि को हम सबके अंतःकरण में प्रतिष्ठापित करें। ऋतंभरा प्रज्ञा की शरण में हमारी अंतःचेतना को नियोजित कर दें। वस्तुतः भगवान का सबसे बड़ा वरदान-अनुदान मनुष्य के लिए यही हो सकता है कि उसे जीवन लक्ष्य की दिशा में चल पड़ने में समर्थ आत्मबल मिले। पेट और प्रजनन के लिए मरने-खपने वाले वासना-तृष्णा के गुलाम नर-कीटकों से भिन्न प्रकार का देव मार्ग अनुसरण कर सकने की साहसिकता ही मानव जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। उसी को प्राप्त करने के लिए उत्कृष्ट आकांक्षा, आतुरता एवं तत्परता की प्रार्थना की गई है। इससे बड़ी न कोई कामना हो सकती है और न इस दिशा में प्रगति से बढ़कर और सफलता संभव है।

उपर्युक्त भावार्थ गायत्री मंत्र का ऐसा है जो जीवन के स्वरूप, लक्ष्य, उपयोग और कर्तृत्व की दिशा निर्धारण करने में पूरी तरह समर्थ है। इसके अतिरिक्त गायत्री गीता, गायत्री-स्मृति, गायत्री मंजरी, गायत्री मंत्रार्थ प्रभृति पुस्तकों में उन २४ अक्षरों के देश, काल, पात्र के अनुरूप, विभिन्न क्षेत्रों में प्रयुक्त किए जाने के लिए जो भाष्य किए हुए हैं। वे ऐसे हैं जिन्हें मिलाकर एक विश्वमानव की, एक समग्र धर्मशास्त्र की—अध्यात्म संहिता की आवश्यकता पूरी हो जाती है। इन प्रेरणाओं

और शिक्षाओं का यदि भली प्रकार अवगाहन किया जाए और उन्हें कार्यरूप में परिणत किया जाए तो निस्संदेह मनुष्य इसी जीवन में स्वर्ग और जीवन मुक्ति का आनंद-लाभ कर सकता है।

मंत्रराज्ञी (गायत्री महामंत्र) का विज्ञान पक्ष—

गायत्री के ज्ञान की चर्चा ऊपर की जा चुकी है। इससे भी बढ़कर उसका विज्ञान पक्ष है। महामंत्र के इन २४ अक्षरों की विशेष विधि-विधान के साथ साधना की जाए तो अंतरंग में प्रसुप्त पड़ी हुई उन शक्तियों का जागरण होता है, जिनकी प्रखरता सामान्य से मानव प्राणी को असामान्य, अद्‌भुत और असीम बना सकती है। कार्यक्षमता में पशु-पक्षियों जितनी सामर्थ्य से भी पिछड़ा हुआ मनुष्य सृष्टि का मुकुट-मणि इसी कारण बन सका है कि उसके भीतर दिव्यशक्तियों के समस्त बीज सूक्ष्म रूप में विद्यमान हैं। इन शक्तिबीजों को अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित और फलित करने की आत्मविद्या से संबंधित प्रक्रिया साधना कहलाती है। योगाभ्यास, तपश्चर्या, पुरश्चरण पद्धति, भक्ति, उपासना, ध्यान-धारणा आदि अनेक क्रियाकृत्य इसी साधना प्रयोजन की पूर्ति के लिए बनाए गए हैं। गायत्री मंत्र द्वारा यह प्रक्रिया सरलतापूर्वक संपन्न की जा सकती है।

हमारे मुख से जो शब्द उच्चारण होते हैं, उनका उद्‌गम एवं प्रभाव शरीर के उन मर्मस्थलों तक होता है जिन्हें उपत्यिका या केंद्र कहते हैं। शरीरशास्त्र के अनुरूप इन्हें हारमोन उत्पादक मर्मस्थल माना जाता है। सभी जानते हैं कि शरीर की संरचना, वृद्धि एवं परिपुष्टि में इन ग्रंथियों का कितना अधिक महत्त्व है? गायत्री मंत्र के शब्द जब मुख द्वारा उच्चारित किए जाते हैं, तब उनका प्रभाव इन केंद्र-ग्रंथियों पर पड़ता है और व्यक्तित्व के बहुमुखी विकास का पथ प्रशस्त होता है। टाईप राइटर की कुंजियों को उँगली से दबाने पर उनकी तीलियाँ उछलती हैं और कागज पर अभीष्ट अक्षर छप जाता है। ठीक इसी प्रकार गायत्री मंत्र का प्रत्येक अक्षर जप-प्रक्रिया के साथ-साथ गुह्य मर्मस्थलों को जाग्रत करता रहता है। फलस्वरूप व्यक्तित्व में ऐसी विशेषताएँ उभरने लगती हैं, जिनके कारण अनेकों भौतिक एवं आत्मिक सफलताएँ प्राप्त कर सकना सरल बन जाए। यही गायत्री उपासना द्वारा प्राप्त होने वाले अद्‌भुत लाभ-परिणामों का मूलभूत कारण है।

सितार के तारों को एक विशेष क्रम से बजाने पर उसका ध्वनि-प्रवाह विशिष्ट राग-रागिनियों के रूप में प्रस्फुटित होता है। गायत्री मंत्र को भी एक प्रकार का सितारवादन कह सकते हैं। काया में मेरुदंड एक प्रकार का दिव्य सितार है, उसमें इडा, पिंगला, सुषुम्ना आदि सहस्रों नाड़ीतंतु नियोजित हैं। गायत्री मंत्र का शब्द-गुंथन इस प्रकार क्रमबद्ध रूप से हुआ है कि उसके शब्दोच्चार सुव्यवस्थित शक्ति-प्रवाह उत्पन्न करें। इस लय—झंकार से स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों की अविज्ञात विशेषताएँ सजग होती चली जाती हैं। वीणा की ध्वनि से सर्प, मृग आदि जीवों का अंत:करण भाव-विभोर हो उठता है। गायत्री का मंत्रोच्चारण कायकलेवर के अंतरंग तंतुओं को झंकृत करके ऐसी मधुर ध्वनि कंपन उत्पन्न करता है, जिससे साधारण मनुष्य की असाधारण गरिमा के जाग्रत होने की विधि-व्यवस्था अनायास ही चल पड़े। कहना न होगा कि जीवन की प्रत्येक भली-बुरी उपलब्धि का कारण मनुष्य की आंतरिक स्थिति ही होती है। जब अंतरंग उभरे तो कोई कारण नहीं कि अनेक सिद्धियों, विभूतियों, सफलता और समृद्धियों को प्राप्त कर सकना सरल न हो सके।

समझा जाता है कि अदृश्य लोकों के निवासी कोई दिव्य सत्ताधारी देवी-देवता मंत्र साधना से प्रसन्न होकर वरदान प्रदान करते हैं। पर सचाई यह है कि अपनी ही अविज्ञात एवं प्रसुप्त स्थिति में पड़ी हुई दिव्य शक्तियाँ देवी-देवता हैं और यदि अपने आचार-विचार को अनुकूल बना लिया जाए, साधनात्मक अध्यात्म व्यायामों द्वारा उन्हें सजग कर लिया जाए तो मनुष्य देवोपम क्षमताएँ प्राप्त कर सकता है। गायत्री उपासना द्वारा यही उद्देश्य पूरा होता है। फलत: मनुष्य अपने समीपवर्ती लोकों की अनेक भौतिक, आत्मिक कठिनाइयों का निराकरण कर सकने में समर्थ हो जाता है। अवरुद्ध प्रगति-पथ को खोल सकना भी उसके लिए दुस्तर नहीं रहता। साधनात्मक पुरुषार्थ में उपलब्ध विभूतियों से न केवल आत्मोन्नति का पथ प्रशस्त होता है वरन दूसरे कष्ट-पीड़ितों को राहत देने, गिरों को उठाने और मंदगामियों को द्रुतगति संपन्न बना सकना भी संभव हो जाता है। तपस्वियों के आशीर्वाद-वरदान से विपत्ति-निवारण एवं सौभाग्य-संवर्द्धन की जो अगणित प्राचीन-अर्वाचीन घटनाएँ देखने-सुनने को मिलती

हैं, उनका यही कारण है। धन-संपदा की तरह कोई उदार व्यक्ति अपनी धन-संपदा से दूसरों को लाभान्वित कर सके। यह संभव भी है और सरल भी। गायत्री मंत्र की उपासना इस प्रकार की उपलब्धियों का द्वार प्रत्येक साधक के लिए खोलती है।

गायत्री साधना से षटचक्रों और पंचकोशों का जागरण—

गायत्री की उच्चस्तरीय साधना षटचक्रों का जागरण और पंचकोशों का अनावरण करती है। आत्मविद्या के ज्ञाता जानते हैं कि जिस प्रकार स्थूलशरीर में मस्तिष्क, हृदय, फुफ्फस, आमाशय, यकृत, आँतें, गुरदे, आदि अवयव मुख्य हैं, उन्हीं के कारण जीवनरथ आगे चलता है। उसी प्रकार सूक्ष्मशरीर में—(१) मूलाधारचक्र (२) स्वाधिष्ठानचक्र (३) मणिचक्र (४) अनाहतचक्र (५) विशुद्ध्यांख्य चक्र तथा (६) आज्ञा-चक्र—यह छह शक्तिचक्र प्रचंड बिजलीघर जैसी क्षमता अपने भीतर दबाए बैठे हैं। उन्हें बल देने वाला एक अत्यंत सामर्थ्यवान कुंडलिनी चक्र है। मस्तिष्क के ब्रह्मरंध्र में सहस्रदल कमल है। इन सब शक्ति-केंद्रों की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं। यदि इन बंद पड़े बिजलीघरों को संचालित किया जा सके तो साधक में अलौकिक विशेषताएँ उत्पन्न हो सकती हैं जिन्हें ऋद्धि-सिद्धियों के नाम से पुकारते हैं।

सूक्ष्मशरीर के भीतर एक और आवरण है जिसे कारणशरीर कहते हैं, इसके पाँच दिव्य रत्न भांडागार हैं। इन्हें पंचकोश के नामों से जाना जाता है—(१) अन्नमयकोश (२) प्राणमयकोश (३) मनोमय-कोश (४) विज्ञानमयकोश (५) आनंदमयकोश। इन कोशों को खोल सकने की चाबी जिसके पास हो उसे अपने भीतर ईश्वरीय उत्तराधिकार में मिले अजस्र वैभव को लाभ मिल जाता है।

बार-बार लगातार एक क्रिया-कलाप अपनाने से एक घर्षणात्मक ऊर्जा उत्पन्न होती है। उसे भौतिक विज्ञान के छात्र भली प्रकार जानते हैं। अध्यात्म विज्ञान में एक ही शब्दावली का एक ही चिंतन और एक ही लक्ष्य के साथ एक ही क्रम से उच्चारण करने की जप-प्रक्रिया भी ऐसा ही अद्‌भुत ब्रह्मतेजस्-आत्मबल उत्पन्न करती है। गायत्री मंत्र के

जप-अनुष्ठान का साधना शास्त्रों ने एक स्वर से माहात्म्य गाया है और गायत्री को भूलोक की कामधेनु कहा है। कल्पवृक्ष जैसी मनोकामना पूर्ण करने वाली, पारस के समान जीवन का कायाकल्प करने वाली तथा अमृत के समान अमरता का आत्मज्ञान प्रदान करने वाली भी कही गई है।

यह महामंत्र प्रत्येक भारतीय धर्मानुयायी का एकमात्र एवं अनिवार्य उपास्य मंत्र है। इसी से उसे गुरुमंत्र कहते हैं। यज्ञोपवीत संस्कार के साथ दूसरा जन्म आरंभ होता है और उपनयन में प्राण-प्रतिष्ठा गायत्री मंत्र की ही है। इस अवसर पर उपास्य आधार हर हिंदू को गायत्री ही स्वीकार करनी होती है। भारतीय धर्म के दो प्रतीक हैं—एक शिखा दूसरा यज्ञोपवीत। यह दोनों गायत्री यज्ञ के प्रतीक सिंबल हैं। शिखा के स्वरूप में प्रत्येक हिंदू के सिर पर गायत्री की ध्वजा फहराती है और यज्ञीय जीवन का व्रतबंध कंधे पर जनेऊ के रूप में धारण करके रहना होता है। उपनयन में नौ धागे गायत्री के नौ शब्द हैं। तीन व्याहृतियों (भूः भुवः स्वः) तीन गाँठें हैं और ॐ जनेऊ में लगी हुई बड़ी ब्रह्मग्रंथि है। इस प्रकार गायत्री के एक-एक शब्द का प्रतीक त्रिपदा के तीन चरण तीन लड़ों से यज्ञोपवीत का स्वरूप विनिर्मित किया गया है। अन्यान्य देवमंत्रों, संप्रदाय मंत्रों के बारे में कहा गया है कि जिसे गायत्री न आती होगी, जो नित्यकर्म में गायत्री उपासना न करता होगा, उसके अन्य मंत्र निष्फल चले जाएँगे। इस वचन का मंतव्य यह है कि कोई अन्य किसी मंत्र की साधना भले ही करे पर गायत्री की उपेक्षा करके नहीं। संध्यावंदन भारतीय उपासना की प्रामाणिक पद्धति है और स्पष्ट है कि संध्या विधान का प्राण गायत्री मंत्र ही है। गायत्री उपासना की उपेक्षा करने वालों की धर्मशास्त्रों में कटु भर्त्सना की गई है।

यह सब इसलिए किया गया है कि प्रत्येक भारतीय धर्मानुयायी को आध्यात्मिक संपदा से लाभान्वित होने का अवसर अनिवार्य रूप से मिलता रहे। ज्ञान और विज्ञान को बहिरंग तथा अंतरंग विभूतियों की उपलब्धि के लिए गायत्री महामंत्र कितना उपयोगी है ? इसका प्रयोग-

परीक्षण सहस्रों वर्षों तक करने के उपरांत ही ऋषियों ने उसे इतना उच्चस्तरीय सम्मान प्रदान किया है। तत्त्वदर्शन की दृष्टि से उसे नारीत्व की गरिमा, मानवता की अवस्था, आत्मा की महिमा, सद्कर्म की महत्ता के रूप में प्रतिपादित किया गया है। इतिहास-पुराणों से पता चलता है कि भगवान के समस्त अवतारों से लेकर ऋषियों-मनीषियों, साधु-ब्राह्मणों का एकमात्र उपास्य गायत्री मंत्र ही रहा है। वही सर्वजनीन एवं सार्वभौम भी है। हर देश, धर्म, जाति, लिंग, आयु का व्यक्ति निर्बाध रूप से इसकी उपासना कर सकता है।

एकता की दृष्टि से भाषा, वेश, भाव की एकता अभीष्ट होती है। हिंदू धर्म में इन दिनों वर्णभेद का सांप्रदायिक बिखराव बेहिसाब आया है। एकता के अभाव में ही देश को शताब्दियों तक पराधीनता के पाश में जकड़ा रहना पड़ा। राष्ट्रीय निर्माण के लिए सर्वतोमुखी एकता आवश्यक है। उसमें भावनात्मक-धार्मिक एकता का प्रयोजन तो गायत्री मंत्र को उपास्य स्वीकार कर लेने से ही पूरा हो जाता है। मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, पारसी आदि सभी विश्व के प्रधान धर्मों का एक-एक निर्धारित उपासना मंत्र है। उस आधार पर उनकी सांस्कृतिक एकता को बल मिलता है। हिंदू धर्म में पिछले दिनों जो धार्मिक अराजकता की बाढ़ आई, उसमें अगणित संप्रदाय मत-मतांतर बरसाती मेढ़क की तरह उग पड़े और हर एक ने अपने-अपने अलग मंत्र गढ़ लिए तथा एक वैदिक धर्म को सत्रह सौ टुकड़ों में बाँट डाला। इस अराजकता का अंत होना ही चाहिए, इसका आरंभ उपास्य की एकता से किया जाए। इसलिए आवश्यक है कि प्रत्येक भारतीय मूल के धर्मानुयायियों को गायत्री मंत्र को ही उपासना का आधार बनाना चाहिए। गंभीरतापूर्वक देखा जाए तो उसमें विश्व की एकमात्र उपासना बन सकने की भी विशेषताएँ विद्यमान हैं। जब कभी एक विश्वधर्म बनेगा और उस संदर्भ में जब भी किसी मंत्र की खोज की जाएगी तो निस्संदेह तब गायत्री से बढ़कर आधार प्राप्त न किया जा सकेगा।

गायत्री मंत्र की उपासना प्रारंभिक स्थिति में अति सरल है। स्नानादि से शुद्ध होकर प्रातःकाल पवित्र स्थान पर आसन लगाकर जलपात्र पास में रखें। संभव हो तो अगरबत्ती या दीपक जला लें और गायत्री मंत्र का अथवा गायत्री माता का चित्र रखकर उसका चंदन अथवा पुष्प से पूजन-वंदन करें। तीन बार इसी मंत्र से आचमन करें—

मुख, नाक, नेत्र, भुजा, जाँघों का गायत्री मंत्र के साथ जल स्पर्श करें। इसी मंत्र के मानसिक उच्चारण के साथ तीन बार गहरी साँस लें और छोड़ें। शिखा स्थान पर जल स्पर्श करें। उसके उपरांत गायत्री मंत्र का जप आरंभ कर दिया जाए। पंद्रह मिनट इसके लिए कम से कम नियत रहें। माला हो तो तीन माला अन्यथा घड़ी से भी समय का निर्धारण हो सकता है। शब्दोच्चारण ऐसा हो जिसे पास में बैठा व्यक्ति सुन न सके, किंतु होठ, कंठ और जीभ तीनों ही चलते रहें। जप के समय ध्यान करना चाहिए कि परमात्मा का सूर्य जैसा प्रकाश सामने उपस्थित है और उसकी किरणें शरीर में अंग-प्रत्यंग में प्रवेश करती हुई आरोग्य प्रदान कर रही हैं। मस्तिष्क में प्रवेश करके सद्ज्ञान को प्रकाशित कर रही हैं और अंत:करण में घुसकर सद्भावनाएँ आलोकित कर रही हैं। अंतरंग और बहिरंग का कण-कण सत्-चित् और आनंद में ज्योतिर्मय हो रहा है। जप और ध्यान की समन्वित प्रक्रिया पूरी होने पर समीप रखा हुआ जलपात्र सूर्य भगवान के सम्मुख चढ़ा देना चाहिए। रास्ता चलते, चारपाई पर सोते हुए, खाली समय में भी जप किया जा सकता है, पर ऐसी हालत में मुँह बंद रखकर मानसिक जप ही करना चाहिए।

यह सरलतम साधनाक्रम है जिसे कोई भी बिना किसी हिचक और झिझक के अपना सकता है और लाभान्वित हो सकता है। यह उपासना ऐसी है कि विधि-विधान या उच्चारण में किसी प्रकार की त्रुटि रह जाए तो भी उसमें कुछ दुष्परिणाम की तनिक भी आशंका नहीं है। इसके आगे की अधिक कठोर और अधिकतम तितिक्षायुक्त योग साधनाएँ और तपश्चर्याएँ चलती है, उनके परिणाम भी उसी स्तर के होते हैं। इन विधि-विधानों का उल्लेख 'गायत्री महाविज्ञान' ग्रंथ के तीनों खंडों में विस्तारपूर्वक हो चुका है। विशिष्ट जिज्ञासु उन ग्रंथों के आधार पर अपनी जिज्ञासा का समाधान कर सकते हैं। साधारणत: इतना ही जानना पर्याप्त है कि गायत्री मंत्र का अर्थचिंतन अंत:चेतना को सद्ज्ञान से ओत-प्रोत करता है और इसकी जप-तपपरक साधना में सिद्धियों और विभूतियों की संभावना विनिर्मित होती है। आंतरिक अंधकार और बाह्य जीवन का अभाव-अवरोध निरस्त करने में यह महामंत्र अति सुखद परिणाम उत्पन्न करता है। विश्वास के लिए परीक्षा के रूप में कोई भी कुछ दिन इसका प्रयोग करके देख सकता है। इस

संदर्भ में प्रयुक्त किया गया श्रम और मनोयोग कभी भी निष्फल जाता नहीं देखा गया।

गायत्री की विशिष्ट उपासना करके प्राचीनकाल में ऋषियों, मनीषियों, ब्रह्मवेत्ताओं, महामानवों ने कैसी अनुभूतियाँ प्राप्त कीं ? इसके अगणित कथा-प्रकरण इतिहास-पुराणों में भरे पड़े हैं। सफल अध्यात्म साधकों में से पिछले दिनों में ऐसे अनेक व्यक्ति हुए हैं, जिनकी अलौकिकताएँ प्रमाणित करने वाले अभी भी अनेक साक्षी जीवित हैं। इन दिनों भी ऐसे ज्ञात और अविज्ञात गायत्री उपासक मौजूद हैं, जिनकी विशेषताएँ अविश्वासियों में विश्वास और नास्तिकों में आस्तिकता उत्पन्न करती हैं। (गायत्री तपोभूमि के संस्थापक वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य की गणना ऐसे ही लोगों में की जाती है। उनका सर्वतोमुखी अगाध ज्ञान-भंडार, तेजस्वी व्यक्तित्व, उज्ज्वलतम आदर्श चरित्र, बालकों जैसा निश्छल एवं मनोरम स्वभाव, हृदयस्पर्शी व्यक्तित्व, मर्मभेदी लेखनी, विश्व के भावनात्मक नवनिर्माण के लिए सुसंचालित युग निर्माण अभियान, असंख्य व्यक्तियों को उभारने-उछालने की शक्ति, आपत्तिग्रस्तों को संकट से उबारते रहने का अजस्र अनुदान, भारतीय संस्कृति को हृदयग्राही रूप से प्रस्तुत करने का सफल प्रयास, भारतीय धर्मशास्त्रों का आदि से अंत तक सरल भाष्य, संपर्क के व्यक्तियों को विदित उनकी अति मानवी विशेषताएँ देखकर कोई भी गायत्री उपासना के सत्परिणाम की प्रामाणिकता स्वीकार करने को विवश हो सकता है। गायत्री महापुरश्चरणों का उनकी पत्नी माता भगवती देवी की साधना प्रक्रिया देखकर अभी भी उस युग का आभास प्राप्त किया जा सकता है जिसमें साधना और सिद्धि की गरिमा सदैव असंदिग्ध रही है।)

गायत्री रहस्य और यज्ञ रहस्य का अवतरण—

गायत्री यज्ञ अभियान का प्रत्यक्ष प्रयोजन है—उत्कृष्ट चिंतन एवं आदर्श कर्तृत्व की विद्या को जन मानस में उतारना और सतयुगी वातावरण विनिर्मित करना। महामंत्र के अक्षरों में सन्निहित शिक्षाओं और अग्निहोत्रीय कर्मकांड में समन्वित प्रेरणाओं की व्याख्या करके श्रेष्ठतम पद्धति के साथ लोक-शिक्षण दिया जा सकता है। कहना न होगा कि समस्त विपत्तियाँ, विभीषिकाएँ मात्र दुर्बुद्धि-दुष्प्रवृत्ति की उपज होती हैं। आज का लोक-समाज निकृष्टताओं से भर गया है, फलस्वरूप अगणित

उलझनें और समस्याएँ सामने आ खड़ी हुई हैं। यदि सर्वनाश की ओर अग्रसर सामूहिक आत्महत्या को समुद्यत, जनसमाज को बचाना है तो भावनात्मक नवनिर्माण के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं। अंधकार में भटकने से विरत होकर प्रकाश की ओर चलने के लिए जो उपाय तत्काल किया जाना चाहिए, उसकी समग्र शिक्षा गायत्री और यज्ञ माध्यमों को सामने रखकर जितनी अच्छी तरह की जा सकती है उतनी और किसी तरह नहीं।

इसके अतिरिक्त एक और भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण और सारगर्भित तथ्य यह है कि इन महातत्त्वों की साधनात्मक कर्मकांडपरक प्रक्रिया सूक्ष्मजगत में ऐसी अद्भुत हलचल उत्पन्न करने में समर्थ है जिससे अदृश्य वातावरण में भारी हेर-फेर होकर समाधानकारक परिस्थितियाँ उत्पन्न हों। यज्ञयुक्त गायत्री का मंत्रोच्चार अपने रेडियोधर्मी किरण अदृश्य जगत में उत्पन्न करते हैं और उनसे न केवल मानवी मस्तिष्क वरन वातावरण भी परिष्कृत होता है। यह ऐसी उपलब्धि है जिससे विश्वशांति की संभावनाओं में महान योगदान मिल सकता है। आज की प्रतिकूल परिस्थितियों में प्रचारात्मक, विचारात्मक एवं संघर्षात्मक सुधार-प्रक्रिया के साथ-साथ अध्यात्म विज्ञानसम्मत अदृश्य शोधन का उपचार भी आवश्यक है। गायत्री यज्ञों का अभियान दोनों प्रयोजनों को अपने ढंग से बड़ी खूबी के साथ पूरा करता है। कहना न होगा कि यदि चेतनात्मक वातावरण बदला जा सके तो परिस्थिति में आशाजनक परिवर्तन हो सकता है। उज्ज्वल भविष्य की संभावनाएँ साकार हो सकती हैं।

युग निर्माण योजना द्वारा संचालित गायत्री अभियान में व्यष्टि और समष्टि का उभयपक्षीय उत्कृष्ट उद्देश्य जुड़ा है। गायत्री मंत्र व्यक्तिगत उत्कर्ष की और यज्ञ सामाजिक उन्नति की संभावनाएँ प्रस्तुत करता है। जिस प्रकार राष्ट्रीय ध्वज और भारत माता के भावनात्मक प्रतीकों से हमारी देशभक्ति को बल मिलता है, उसी प्रकार गायत्री और यज्ञ आदर्शवादी उत्कृष्टता को अग्रगामी बनाते हैं। इन दूरदर्शितापूर्ण संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए इन दोनों महान आधारों को व्यक्तिगत रूप से नित्यकर्म में सम्मिलित किया गया है और सामूहिक आयोजनों के रूप में षोडश संस्कारों का त्योहारों एवं विशिष्ट अवसरों पर

विशाल आयोजन के रूप में उन्हें प्रयुक्त करने की धर्मपरंपरा स्थापित की गई है।

विश्व व्यवस्था की दृष्टि से राजतंत्र और धर्मतंत्र की ही प्रधानता है। भौतिक जगत पर राजतंत्र का नियंत्रण रहता है और मानवी चेतना को धर्म द्वारा व्यवस्थित किया जाता है। प्राचीनकाल में जब राजतंत्र में विकृतियाँ आती थीं, तब राजसूय यज्ञों के नाम से विशालकाय राजनीतिक नेता सम्मिलित होते थे और सामाजिक समस्याओं का समाधान करके राजसत्ता को निर्दोष बनाया जाता था। राजसूय यज्ञों में अश्वमेध पद्धति की प्रधानता थी।

धर्मतंत्र में विकृतियाँ आने पर वैसे ही विशालकाय वाजपेय यज्ञ आदि सम्मेलन होते थे, जिनमें धर्मवेत्ता इकट्ठे होकर तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियों को सँभालते थे। वाजपेय यज्ञों की एक उत्कृष्ट पद्धति गायत्री यज्ञों को एक जन-आंदोलन के रूप में चलाया जा रहा है। इसका उद्देश्य प्रगतिशील धर्मतंत्र को पुनर्जीवित करना और उसके आधार पर व्यक्ति और समाज का भावनात्मक एवं भौतिक स्तर ऊँचा करना है। युग निर्माण योजना इसी कार्यपद्धति का नाम है। धर्मतंत्र के माध्यम से भावनात्मक नवनिर्माण का उद्देश्य लेकर वह आगे बढ़ रही है। गायत्री यज्ञों के धर्मानुष्ठानों के साथ-साथ युग निर्माण सम्मेलन अनिवार्य रूप से जुड़े रहने का क्रिया-कलाप इसी दृष्टि से है।

युग निर्माण परिवार द्वारा संचालित गायत्री यज्ञों के याज्ञिकों को अपने शारीरिक, मानसिक, सामाजिक दोष-दुर्गुणों में कम से कम एक का त्याग करके और कम से कम एक नई सत्प्रवृत्ति अपनाकर यज्ञीय जीवन जीने का शुभारंभ करना पड़ता है। इस शृंखला में आबद्ध होकर अब तक लाखों, करोड़ों व्यक्ति भावनात्मक नवनिर्माण की ओर उत्साहवर्द्धक कदम उठा चुके हैं। प्रत्येक यज्ञ आयोजन की स्मृति में पुस्तकालय, वाचनालय, विद्यालय, आरोग्य-केंद्र, रात्रि पाठशालाएँ, महिला पाठशालाएँ, व्यायामशालाएँ, शिशु-कल्याण केंद्र, शाक-वाटिकाएँ, फल-उद्यान सुरक्षा दल, श्रमदान का प्रचलन, कुरीति-निवारण अभियान, स्वच्छता मंडली, सृजन सेना शिक्षण, कुटीर उद्योग जैसे अभिनव

रचनात्मक प्रयोग प्रारंभ किए जाते रहे हैं। नशा, जुआ, आलस्य, छल, अनाचार जैसी दुष्प्रवृत्तियों के त्याग के लिए हर युग निर्माण सम्मेलन ने उभार-उत्साह पैदा किया है। दहेज, मृत्युभोज, परदा प्रथा, भिक्षा-वृत्ति, जाति-पाँति के आधार पर नीच-ऊँच, बाल-विवाह, अनमेल विवाह, पशुबलि जैसी कुरीतियों के उन्मूलन के लिए मात्र विरोध ही नहीं, स्थान-स्थान पर प्रचंड संघर्ष भी खड़े किए गए हैं और उस प्रयास में आशातीत सफलता भी मिली है।

यह सारे कार्यक्रम मात्र प्रदर्शनात्मक नहीं वरन ठोस आधार पर अवस्थित हैं। उन्हें किसी दबाव से थोपा नहीं गया और न किसी यश या नामवरी जैसे छोटे स्वार्थपूर्ण दृष्टिकोण से वह किए जा रहे हैं। उनके पीछे उत्कृष्ट मानवीय दृष्टिकोण सन्निहित है। अंतःकरण की प्रबल प्रेरणा के कारण उन्हें चालू किया जाता है। जो प्रखर विचारों की गहन प्रतिक्रिया स्वरूप जाग पड़ते हैं। किसी पर उपकार करने की दृष्टि से वह नहीं किए जाते। पर अपने अनिवार्य नागरिक कर्त्तव्य, सामाजिक ऋण की पूर्ति की शुद्ध भावना से उन्हें किया जाता है। इसलिए हर व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत साधना के रूप में उन्हें लेकर चलता है। किसी की आशा-निराशा, सफलता-असफलता से अप्रभावित अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने का एक अदम्य उत्साह सबमें रहता है।

गायत्री यज्ञों के साथ जुड़े हुए युग निर्माण सम्मेलनों में प्रयत्नपूर्वक उस क्षेत्र के प्रगतिशील धर्मप्रेमी एकत्रित किए गए हैं और इस प्रश्न पर गंभीरतापूर्वक विचार किया गया है कि धर्म के नाम पर प्रचलित अंधविश्वास, शोषण, छल-छद्म एवं प्रतिगामिता का अंत कैसे कराया जाए! जहाँ जिस प्रकार आवश्यक एवं संभव समझा गया है, वहाँ उसी प्रकार के ऐसे कदम उठाए गए हैं जिनसे धर्मतंत्र को लोकमंगल और जनकल्याण का अविच्छिन्न आधार सिद्ध किया जा सके। इन प्रयासों का ही फल है कि धर्म को निरंतर कोसते रहने वालों ने भी एक स्वर से उसकी गरिमा एवं उपयोगिता स्वीकार की है। धर्मतंत्र को प्रगतिशील बनाने का प्रयास प्राचीनकाल के वाजपेय यज्ञों की परिपाटी के आधार

पर जिस प्रकार गायत्री यज्ञों ने संभव किया है उससे चिरप्राचीन और चिरनवीन एकसूत्र में बँध चले हैं।

प्रगतिशील गायत्री यज्ञों का स्वरूप, पिछले दिनों की अविवेक-युक्त रूढ़िवादिता से सर्वथा भिन्न है। इन दिनों अन्न की देश में कमी है—इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए इन अग्निहोत्रों में अन्न का एक दाना भी नहीं होमा जाता, केवल सुगंधित और गुणकारी जड़ी-बूटियों की आहुति दी जाती है। घी को भी अत्यंत न्यून मात्रा में प्रतीक जितना ही होमा जाता है। जाति, लिंग का भेद किए बिना मानवमात्र को इन धर्मानुष्ठानों में सम्मिलित होने का प्रचलन धार्मिक क्षेत्र में एक क्रांति ही कही जा सकती है। इन आयोजनों के सहयोगी भी सच्चे प्रतीत होते हैं। अब तक एक जाति के लोग दूसरी जाति के साथ सम्मिलित नहीं होते थे। सामाजिक समता का जैसा भावपूर्ण स्नेहसिक्त वातावरण इन आयोजनों में देखा जाता है, इससे हर कोई यह आशा कर सकता है कि इस मिशन का सार्वभौम एकता का स्वप्न साकार होकर रहेगा। एक धर्म, एक जाति, एक भाषा, एक राष्ट्र का स्वप्न और यह प्रगति की ओर बढ़ते हुए चरण आज नहीं तो कल एक सचाई के रूप में सामने आएँगे।

त्याग और सहयोग की भावना का जागरण और विकास जिस कुशलता और तीव्रता से इस माध्यम से हो रहा है, वह कम उत्साहवर्द्धक नहीं। जिस क्षेत्र में यज्ञ किए जाते हैं, वहाँ के व्यक्तियों को लोकमंगल के लिए भगवान के विराट स्वरूप की उपासना-पूजा के लिए तैयार किया जाता है। धन, पद, वर्ग, जाति का भेद भुलाकर सभी लोग भ्रातृभाव से अपनी-अपनी शक्ति, सामर्थ्य एवं भावनानुसार काम में लग जाते हैं। अपने अनुदान उसमें नियोजित करते हैं। थोड़ा-थोड़ा सहयोग एकत्र करके विशाल कलेवर खड़ा कर देना, अपने समय, श्रम तथा साधनों में ईश्वर का, समाज का, राष्ट्र का हक स्वीकार करना ऐसे तथ्य हैं जो उच्च नागरिकों में सामाजिक दृष्टिकोण विकसित होने का प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

व्यक्तिगत जीवन में आदर्शवादिता और उत्कृष्टता की स्थापना के लिए गायत्री तत्त्वदर्शन असंदिग्ध रूप से उपयोगी है। सामाजिक जीवन में न्याय, विवेक और सहयोग की सत्प्रवृत्तियों को अग्रगामी बनाने में

यज्ञीय धर्मानुष्ठान की भूमिका निश्चित रूप से अति महत्त्वपूर्ण है। शताब्दियों के पिछड़ेपन से विरत होकर आज देश, धर्म, समाज और संस्कृति के पुनरुत्थान के लिए जो प्रयास किए जा रहे हैं, उनमें गायत्री और यज्ञ को आधार बनाया जा सके तो भारतवर्ष की वर्तमान परिस्थितियाँ सर्वोपरि दूरदर्शितापूर्ण सिद्ध हो सकती हैं।

प्राचीनकाल में तत्त्वदर्शी ऋषियों ने अनेक आधारों, कारणों और संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए गायत्री को भारतीय संस्कृति की जननी और यज्ञ को भारतीय धर्म का पिता घोषित किया था तथा प्रत्येक भारतीय को उन्हें धर्म-प्रक्रिया का अविच्छिन्न अंग मानकर नित्यकर्म में अनिवार्य रूप से सम्मिलित रखने का आदेश किया था। आज परिस्थिति बदल गई है, तो भी यह उन दोनों महान आधारों की गरिमा यज्ञ स्थान पर विद्यमान है। अंधकार में भटकते हुए मानव समाज का भविष्य उज्ज्वल बनाने के लिए गायत्री और यज्ञ का तत्त्व-दर्शन आज भी उतना ही उपयोगी है। इस यथार्थ को सिद्ध करने के लिए युग निर्माण योजना द्वारा संचालित गायत्री यज्ञ अभियान अपने ढंग से प्रयत्नशील है। उसकी उत्साहवर्द्धक प्रतिक्रिया स्पष्ट होती चली जा रही है। वह दिन दूर नहीं जब इन्हीं आधारों के सहारे हम मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग का अवतरण होते हुए प्रत्यक्ष देख सकेंगे।

युग निर्माण योजना द्वारा चालित गायत्री एवं यज्ञ अभियान सद्-विचार और सत्कर्म के समन्वय के शाश्वत सिद्धांत का नवयुग संस्करण कहा जा सकता है। आज की परिस्थितियों में किस ढंग से भावनाओं को प्रखर बनाया जाए ? उन क्षमताओं को विकसित किया जा सके जिनके अभाव में सारे साधन, सारी योजनाएँ तथा सारी उत्कृष्ट आकांक्षाएँ नहीं के बराबर सिद्ध हो रही हैं। इन आयोजनों के सूक्ष्म दार्शनिक पक्ष से लेकर स्थूल कार्यपद्धति तक में उन विशेषताओं का समावेश किया गया है जिनके द्वारा आज के व्यक्ति, समाज एवं वातावरण में इन श्रेष्ठतम सिद्धांतों को व्यावहारिक बनाया जाना संभव हो सके। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण वर्तमान गतिविधियों में भी कम नहीं और भविष्य में तो और भी अधिक स्पष्ट ही होगा।

□□

मुद्रक—युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)